वैदिकपरम्परा में—

कर्माशय एवं उनका भोग

☐ म. म. डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी

मानव के चित्त की समस्त भावनाओं और क्रियाओं को क्लेशहेतुक और अक्लेशक इन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, क्योंकि किसी भावना अथवा क्रिया का साक्षात् अथवा परम्परया यही दो परिणाम हो सकते हैं। ये भावनाएँ और क्रियाएँ सम्पूर्णतया अनासक्तिपूर्वक अथवा परम शिव (परमेश्वर) को समर्पित होकर सम्पन्न होने पर क्लेशहेतुक नहीं होतीं। उस स्थिति में उन्हें अक्लेशहेतुक कहा जाएगा। ऐसी भावनाओं और क्रियाओं का संचय नहीं हुआ करता।[1]

क्लेशहेतुक भावना एवं कर्मों को योगपरम्परा में अविद्या अस्मिता राग-द्वेष और अभिनिवेश, इन पाँच स्थितियों में विभक्त किया जाता है, तथा इन पाँचों का मूल अविद्या है, ऐसा स्वीकार किया जाता है।[2] क्योंकि समस्त क्रियाएँ और उनके भी लोभ क्रोध मोह आदि मनोभाव की उत्पत्ति अविद्या आदि के द्वारा ही होती है, वह ही सबके मूल में रहा करती है। चित्तगत ये भावनाएँ और क्रियाएँ ही विविध अवस्थाओं में परिणत होकर संचित होती हैं, उस अवस्था में इन्हें कर्माशय कहा जाता है। तथा ये प्रसुप्त तनु विच्छिन्न और उदार अवस्थाओं में संचित रहा करती हैं।[3] जिस समय ये मनोभाव (अविद्या अस्मिता आदि चित्त-वृत्तियाँ) बीज की भाँति केवल शक्तिमात्र से चित्त में प्रतिष्ठित रहते हैं, उस स्थिति में इन्हें ही क्लेश-बीज कहा जा सकता है, कालान्तर में आलम्बन को प्राप्त करके ये ही प्रकट हुआ

---

१. क. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिगीषियेच्छतं समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे। —ईश. २.
ख. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः। —गीता ३. १९.
ग. ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।
तेषमहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। —गीता १२. ६-७.
घ. अभ्यासेप्यसमर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥ —गीता १२. १०.

२. अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः, अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्।
—यो. सू. २.३-४.

३. अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो दाराणाम्। —यो. सू. २. ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। इस प्रकार बीजभाव को प्राप्त चित्तवृत्तियों (क्रियाओं) को प्रसुप्तकर्म कहते हैं।[1] साधना के माध्यम से विवेकख्याति का उदय होने के अनन्तर ये चित्तवृत्तिरूप क्लेशबीज दग्ध हो जाते हैं, उनकी अंकुरण शक्ति समाप्त हो जाती है,[2] जिसके परिणामस्वरूप आलम्बन के सम्मुख आने पर भी उनका उदय (अंकुरण) नहीं होता, जैसे कि आग से भुने हुए बीजों को बोने पर अन्य समग्र परिस्थितियों के अंकुरण योग्य होने पर भी दग्ध होने के कारण बीजों का अंकुरण नहीं होता। यह अवस्था कर्मों की पाँचवीं अर्थात् अन्तिम अवस्था है, इस अवस्था को कर्मों की प्रसुप्ति अवस्था भी कहते हैं।[3] तत्त्वज्ञान, आत्मा और इन्द्रियों में भेद की प्रतीति, वैराग्य, मैत्रीभावना एवं अजरामरत्व बुद्धि का उदय होने पर उनके द्वारा उपहत होने से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश क्रमशः क्षीण हो जाते हैं, उस स्थिति में इन क्लेशमूलक कर्मों की तनु अवस्था स्वीकार की जाती है। क्योंकि ये भावनाएँ अविद्या आदि की प्रतिपक्षी भावना है, और उन्हें दुर्बल बना देती है।[4] जब कभी एक विलष्ट चित्तवृत्ति (क्रिया) किसी अन्य वृत्ति (क्रिया) से किञ्चित्काल के लिए दब जाती है, इसे स्थितिविच्छेद या विच्छिन्नता की अवस्था कहते हैं।[5] विषय की प्राप्ति के समय क्लेश के विकास अथवा अनुभूति की अवस्था को उदार कहते हैं।[6] रामानन्द यति के अनुसार विदेह प्रकृतिलय योगियों के क्लेश प्रसुप्त, क्रिया योगियों के तनु तथा विषयासक्त जनों के क्लेशविच्छिन्न तथा उदार कहे जा सकते हैं।[7] इसके विपरीत राजमार्तण्डवृत्तिकार भोज मानव की विशेष स्थायी उपलब्धि के आधार पर क्लेशों को उदाहृत करने के स्थान पर चित्तभूमि की स्थिति के आधार पर उदाहृत करते हैं। उनके अनुसार चित्तभूमि में स्थित, किन्तु प्रबोधक के अभाव में अपना कार्य आरम्भ न करने वाले कर्म प्रसुप्त कहे जाने चाहिए, उदाहरणार्थ बालक के चित्त में विद्यमान काम (रति) आदि क्लेश प्रबोधक सहकारी कारणों के अभाव में अभिव्यक्त नहीं होते।[8] प्रतिपक्ष भावना से जिनकी कार्यसम्पादनशक्ति क्षीण हो गयी है,

---

१. तत्र का प्रसुप्तिः ? चेतसि शक्तिमात्रप्रतिष्ठानां बीजभावोपगमः,
तस्य प्रबोधः आलम्बने सम्मुखीभावः ॥ —योगभाष्य २. ४. पृ. १४४.

२. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः । —यो. सू. २. २६.

३. प्रसंख्यानवतः दग्धक्लेशबीजस्य सम्मुखीभूतेऽप्यालम्बने
नासौ पुनरस्ति, दग्धबीजस्य कुतः प्ररोहः । विषयस्य ···
सम्मुखीभावेऽपि सति न भवति एषां प्रबोध इत्युक्ता प्रसुप्तिः । —योगभाष्य २. ४.

४. क. वितर्कं बाधने प्रतिपक्षभावनम् । —यो. सू. २. ३३
ख. प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति । —यो. भा. २. ४.

५. विच्छिद्य विच्छिद्य तेन तेनात्मा पुनः समुदाचरन्ति इति विच्छिन्ना । कथम् ? रागकाले क्रोधस्यादर्शनात् । न हि रागकाले क्रोधः समुदाचरति, स हि तदा प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो भवति । —यो० भा० २.४.

६. विषये यो लब्धवृत्तिः स उदारः ।—यो० भा० १.४, पृ० १४६

७. तत्र विदेहप्रकृतिलयानां योगिनां प्रसुप्ताः क्लेशाः, क्रियायोगिनां तनवः, विषयसङ्गिनां विच्छिन्नाः उदाराश्च भवन्ति । —मणिप्रभा० २.४, पृ० ६४.

८. ये क्लेशाश्चित्तभूमौ स्थिताः प्रबोधकाभावे स्वकार्यं नारभन्ते ते सुप्ता इत्युच्यन्ते । यथा बाल्यावस्थायाम्, बालस्य हि वासनारूपेण स्थिता अपि क्लेशा प्रबोधसहकार्यभावे नाभिव्यज्यन्ते ।—भोजवृत्ति २.४, पृ० ६३

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु वासना, रूप से अभी चित्त में शेष हैं, ऐसे क्लेशों को **तनुक्लेश** कहते हैं। ये क्लेश प्रभूत और प्रभूततर सहकारी कारण उपस्थित होने पर ही पुनः अपना परिणाम दिखाने में समर्थ हो पाते हैं। क्लेशों की यह स्थिति अभ्यासयुक्त योगियों में प्राप्त होती है, यह कहा जा सकता है। जिन क्लेशों की शक्ति किसी अन्य बलवान् क्लेश से अभिभूत रहती है, उन्हें **विच्छिन्नक्लेश** कहते हैं। तथा सहकारी कारणों को प्राप्त कर उद्भूत अवस्था में विद्यमान क्लेश **उदार** कहे जाते हैं।[1]

प्रसुप्त तनु विच्छिन्न और उदार इन चारों ही प्रकार के क्लेशों से उत्पन्न वृत्ति को कर्म कहते हैं। दूसरे शब्दों में अविद्या अस्मिता रागद्वेष और अभिनिवेश ये प्रसुप्त आदि किसी भी अवस्था में रहते हुए चित्त और इन्द्रियों में व्यापार उत्पन्न करते हैं, इस व्यापार को कर्म कहते हैं। इन कर्मों के द्वारा संस्कार उत्पन्न होते हैं, जिन्हें आशय अथवा कर्माशय कहते हैं।

अविद्या आदि से उत्पन्न कर्मों के संस्कारों, जिन्हें कर्माशय नाम से ही सामान्यतः अभिहित किया जाता है, का फल इस जन्म और जन्मान्तर दोनों में प्राप्त हो सकता है।[2] ये फल तीन प्रकार के हो सकते हैं, जन्म (जाति) आयु और भोग।[3] किस कर्माशय का फल इस जन्म में होगा और किसका जन्मान्तर में इस सम्बन्ध में सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि अतिविशिष्ट पुण्य तथा अति उग्र अपुण्य से निर्मित कर्माशय इसी जन्म में और कभी-कभी सद्यःफलदायी हुआ करते हैं। जैसे—तीव्र संवेगपूर्वक की गयी मन्त्रसाधना तपः-साधना समाधिसाधना अथवा महर्षि या देवता की आराधना द्वारा अर्जित पुण्य कर्माशय सद्यःफलदायी हो जाता है। इस प्रसंग में नन्दीश्वर का उदाहरण दिया जा सकता है जिसने बाल्यावस्था में ही तीव्र मन्त्र तपः समाधि की साधना के फलस्वरूप दीर्घ आयुष्य एवं मानव-शरीर से ही दिव्य भोगों को प्राप्त कर लिया था। महर्षि विश्वामित्र ने भी तपश्चर्या के द्वारा इसी जन्म में ब्राह्मण जाति एवं दीर्घ आयुष्य को प्राप्त किया था।

तीव्र अपुण्यकर्माशय भी शीघ्र फल देते हैं। उदाहरणार्थ भयाकुल रोगी अथवा दीनजनों के साथ किया गया विश्वासघात अथवा पुण्यात्मा महर्षि गुरुजन आदि के साथ किया गया बारम्बार अपकार सद्यःफलदायी होता है। नहुष द्वारा महर्षियों के अपमान से सर्प जाति की प्राप्ति का पौराणिक आख्यान इसका उदाहरण है।[4]

योगसूत्र के व्याख्याकार नागोजिभट्ट के अनुसार कर्माशय का मुख्य फल तो भोग ही हुआ करता है, जाति और आयुष्य तो उसके नान्तरीयक फल हैं, जिनकी प्राप्ति भोगों के लिए पृष्ठभूमि के रूप में हुआ करती है।[5]

---

१. ते तनवो ये स्वप्रतिपक्षभावनया शिथिलीकृतकार्यसम्पादनशक्तयो वासनावशेषतया चेतस्यव-स्थिताः प्रभूतां सामग्रीमन्तरेण स्वकार्यमारब्धुमक्षमाः, यथा अभ्यासवतो योगिनः। ते विच्छिन्ना ये केनचिद् बलवता क्लेशेनाभिभूतशक्तयस्तिष्ठन्ति। —ते उदाराः ये प्राप्त-सहकारिसन्निधयः स्वं स्वं कार्यमभिनिर्वर्त्तयन्ति।—भोजवृत्ति २.४, पृ० ६३.

२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।—यो० सू० २.१२

३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥—यो० सू० २.१३

४. विशेष विवरण हेतु द्रष्टव्य—पातञ्जलयोगशास्त्र एक अध्ययन, पृ. ९०.

५. अत्र भोगो मुख्यं फलम्, तन्नान्तरीयके च जात्यायुषी।
—नागोजिवृत्ति, २. १३. पृ. ७३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन कर्माशयों के फल की अनिवार्यता के सम्बन्ध में भले ही विवाद हो सकता है कि इनका फल प्रत्येक कर्त्ता को अवश्य भोगना पड़ता है, अथवा भोग के बिना भी उनका क्षय हो सकता है। इस प्रश्न पर योग-भाष्यकार व्यास की मान्यता है कि कर्माशय तब तक ही फल-दायी होते हैं, जब तक अविद्या आदि क्लेश विद्यमान रहते हैं। इनका विनाश हो जाने पर ये अंकुरण में उसी प्रकार असफल हो जाते हैं जिस प्रकार शालिबीज आवरण (भूसी) के अलग हो जाने पर अंकुरण में समर्थ नहीं होते। इसी प्रकार विवेकख्याति द्वारा यदि क्लेश भी दग्ध-बीजभाव को प्राप्त हो जाये तो शेष कर्माशय भी दग्धबीजभाव को प्राप्त हो जाते हैं, और उनका कोई फल नहीं होता। सूत्रकार ने स्वयं विवेकख्याति को क्लेश और उनके परिणामों के विनाश का सफल उपाय स्वीकार किया है।[1]

आइये, अब हम कर्माशयों के फलों पर क्रमशः विचार करें। कर्माशय का प्रथम फल जाति अर्थात् जन्म स्वीकार किया गया है। यहाँ एक प्रश्न सहज रूप से उपस्थित होता है, कि क्या एक कर्म का संस्कार एक जन्म का हेतु है, अथवा वह अनेक जन्मों का भी हेतु हो सकता है ? इसी प्रकार दूसरा प्रश्न यह है कि क्या अनेक कर्म मिलकर एक जन्म के हेतु होते हैं, अथवा वे (अनेक कर्म) अनेक जन्मों के भी हेतु हो सकते हैं ? इन चार पक्षों में प्रथम पक्ष अर्थात् 'एक कर्म एक जन्म का हेतु होता है' यह स्वीकार करना उचित नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम तो एक जन्म में अनेक प्रकार के सुख दुःख आदि का अनुभव होता है, जो एक कर्म से उत्पन्न कर्माशय का फल नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक कर्म के परिणाम में एक जन्म मानने पर अनादिकाल से चली आ रही जन्मपरम्परा में से प्रत्येक जन्म में किये गये संख्यातीत कर्मों के अनन्त होने के कारण असंख्य कर्मों के फलयोग का अवसर ही न आ सकेगा। इसी प्रकार एक कर्म को अनेक जन्मों का हेतु भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि उस स्थिति में पूर्वोक्त दोष और भी प्रबल रूप से उपस्थित होंगे। इसके अतिरिक्त इस स्थिति में कर्मों के भोग का क्रम भी न बन पाएगा क्योंकि अनेक जन्म तो एक साथ हो नहीं सकते। इसी भाँति अनेक कर्मों को भी अनेक जन्मों का हेतु मानना भी उचित न बन पायेगा, क्योंकि इस स्थिति में भी क्रमविषयक अव्यवस्था उत्पन्न होगी, तथा अनेक जन्मों में किये गये कर्मों के भोग का क्रम भी न बन सकेगा। इन अनेक विकल्पों के प्रसंग में विविध उपस्थित असुविधाओं को देखते हुए यह मानना अधिक उचित प्रतीत होता है कि जन्म से लेकर मरणपर्यन्त किये गये समस्त कर्मसमूह के द्वारा विव-धतापूर्ण विचित्र फलों वाले जन्म का आरम्भ होता है।[2] क्योंकि वह समूह एक होता है अतः इससे एक जन्म का आरम्भ होता है, तथा कर्मसमूह में कर्मों की बहुलता और वैचित्र्य विद्य-मान रहने के कारण प्राप्त जन्म में भी फलों की बहुलता-विचित्रता रहा करती है।

सामान्यतः अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्माशय का विपाक जन्म, आयु और भोग तीनों रूपों में संभव है, जबकि दृष्ट जन्मवेदनीय कर्मों के संस्कार प्रायः भोग की ही सृष्टि करते हैं;

---

१. क्लेशावनद्धः कर्माशयो विपाकारम्भी भवति, नापनीतक्लेशो न प्रसंख्यानदग्धक्लेशबीजभावो वेति। —योगभाष्य २. १३.

२. तस्माज्जन्मप्रयाणान्तरे (मरणान्तरे) कृतः पुण्यापुण्यकर्माशयप्रचयो विचित्रः प्रधानोप-सर्जनीभावेनावस्थितः प्रयाणाभिव्यक्त एक प्रघट्टकेन मिलित्वा मरणं प्रसाध्य सम्मूच्छित एकमेव जन्म करोति। प्रयाणाभिव्यक्त तच्च जन्म तेनैव कर्मणा लब्धायुष्कं भवति। तस्मिन्नायुषि तेनैव कर्मणा भोगः सम्पद्यते। —योगभाष्य, २.१३

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही द्वीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि कभी-कभी इनके द्वारा आयुःफल भी प्राप्त होता है। एक दो उदाहरण ऐसे भी प्राप्त हैं जहाँ दृष्ट जन्मवेदनीयकर्म का विकास जन्म के रूप में भी हुआ है। नन्दीश्वर और नहुष् के कथानक इसके उदाहरण हैं।[1]

व्यास के अनुसार अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्म पुनः दो प्रकार के हैं—नियतविपाक, और अनियतविपाक। नियतविपाक कर्माशय वह है जिसके फल का प्रतिबन्धन अन्य किन्हीं सबल कर्मों द्वारा नहीं होता, बल्कि उसका फल अवश्य ही भोगना है। अनियतविपाक कर्माशय के फल का प्रतिबन्धन अन्य कर्माशय द्वारा हो सकता है। इसकी तीन स्थितियाँ हो सकती हैं। (१) विपाक के बिना ही नाश, (२) प्रधान कर्म के साथ उसका भी फलभोग, (३) नियतविपाक प्रधानकर्म के द्वारा अभिभूत होने से चिरकाल तक भोग के बिना अवस्थिति।[2] विपाक के बिना ही कर्म का नाश तब होता है, जब उस कर्म के विपरीत फल वाले कर्मों का समूह विद्यमान हो। प्रायश्चित्त के फलस्वरूप अनियतविपाक कर्म का ही नाश होता है, उपनिषद् वाक्य भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[3]

योगसूत्र के टीकाकार नागोजि भट्ट कर्माशय का विभाजन कुछ भिन्न प्रकार से करते हैं। उनके अनुसार प्रथमतः कर्माशय के दो भेद हैं: आरब्ध फलवाला और अनारब्ध फल वाला। इनमें आरब्ध फल वाले कर्माशय का भोग इसी जन्म में होता है। अनारब्ध फलवाले कर्माशय का विभाजन उन्होंने तीन भेदों में किया है—शुक्ल, कृष्ण एवं शुक्लकृष्ण।[4] स्वाध्याय जप आदि **शुक्ल** कर्माशय कहे जाते हैं, जिनके सम्पादन के क्रम में परपीड़ा आदि का अवसर कभी उपस्थित नहीं होता। ये कर्म (शुक्ल कर्म) परिणाम के आधार पर अत्यन्त सबल कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनका उदय होने से अन्य कृष्ण अथवा शुक्लकृष्ण कर्मों का प्रभाव नष्ट हो जाता है। शुक्ल कर्मों के द्वारा जिन कर्मों का प्रभाव नष्ट होता है, उन्हें अनारब्ध फल वाले कर्म कहा जाता है। वैदिक पशुहिंसा आदि कर्म कृष्ण कर्म हैं, किन्तु जब ये कृष्ण कर्म वैदिक यज्ञों के साथ किये जाते हैं, तब इन कृष्ण कर्मों के फल का भोग प्रधान कर्म यज्ञ आदि के फल के भोग के साथ ही होता है। ये अप्रधान कर्म स्वतन्त्र रूप से कर्मफल का आरम्भ करने में समर्थ नहीं होते। जिन कर्मों में हिंसा आदि कृष्ण कर्म एवं दान आदि शुक्ल कर्मों का सहभाव होता है, जैसे हिंसामिश्रित वैदिक याग आदि, वे शुक्लकृष्ण कर्म कहलाते हैं। इन कर्मों का फल भी सदा मिश्रित ही होता है।

अवस्थाभेद से भी कर्मों का वर्गीकरण किया जा सकता है। इसके अनुसार कर्मों के तीन वर्ग होंगे—प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण। कर्माशय में विद्यमान अनन्त कर्मों में से जिनका

---

१. दृष्टजन्मवेदनीयस्त्वैकविपाकारम्भी भोगहेतुत्वात्, द्विविपाकारम्भी वा आयुर्भोगहेतुत्वात्, नन्दीश्वरवन्नहुषवद् वा इति।—यो० भा० २.१३.

२. यो ह्यदृष्टजन्मवेदनीयो नियतविपाकस्तस्य त्रयीगतिः कृतस्याविपक्वस्य नाशः, प्रधानकर्मण्यावापगमनं वा, नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य वा चिरमवस्थानम्। —वही, २.१३

३. द्वे द्वे कर्मणी वेदितव्यै पापकस्यैको राशिः पुण्यकृतोपहन्ति।—योगभाष्य, पृ० १७१ से उद्धृत

४. सः कर्माशयो द्विविधः, आरब्धफलोऽनारब्धफलश्च। तत्रारब्धफलः उक्त एकजन्मावच्छिन्नः। अनारब्धफलोऽपि त्रिविधः, शुक्लः कृष्णः शुक्लकृष्णश्च।—नागोजिवृत्ति २.१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोग प्रारम्भ हो चुका है वे **प्रारब्ध** कर्म कहलाते हैं। दृष्ट जन्मवेदनीय कर्म इसी श्रेणी में आते हैं। इस जन्म में किये गये वे कर्म जिनका भोग (विपाक) इसी जन्म में होना है किन्तु अभी भोग प्रारम्भ नहीं हुआ है, उन्हें प्रारब्ध तो नहीं कहा जा सकता किन्तु फिर भी वे दृष्ट जन्मवेदनीय कर्म कहे जायेंगे। पूर्वजन्मों में किये गये वे कर्म जिनकी समष्टि द्वारा वर्त्तमान जन्म प्राप्त हुआ है, और वे इसके जन्म आयुष् और भोग के हेतु हैं, वे कर्म समष्टि रूप से (व्यक्ति रूप से नहीं) प्रारब्ध कर्मों की कोटि में रखे जायेंगे।

जिन कर्मों का भोग अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है, वे सभी चाहे इस जन्म में किये गये हों चाहे जन्मान्तर में, **संचित** कर्म कहे जाते हैं। इसी प्रकार जो कर्म अभी किये जा रहे हैं, तथा उनका भोग इस जन्म में निश्चित नहीं है, ऐसे सभी कर्म **क्रियमाण कर्म** कहाते हैं।

संचित कर्मों के संस्कारों को अनियत विपाक-अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्माशय के समानान्तर तथा प्रारब्ध कर्मों के संस्कारों को प्रधान अर्थात् नियत विपाक दृष्ट जन्मवेदनीय कर्माशय के समानान्तर रखा जा सकता है। यद्यपि भाष्यकार व्यास ने क्रियमाण कर्मों से उत्पन्न संस्कारों की कोई चर्चा नहीं की है, किन्तु फिर भी इस प्रकार के संस्कारों को दृष्ट जन्मवेदनीय अथवा अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्मों में यथावसर रखा जा सकता है।

इन कर्माशयों से जिस जाति (जन्म) आयुः और भोग की उत्पत्ति होती है, उनके द्वारा जीव को क्लेश का ही अनुभव होता है, दुःख का ही अनुभव होता है। सर्वसामान्य जहाँ कहीं सुख का भान करता है वहाँ वह सुख का भान भ्रममूलक होता है। योगिजन वहाँ सुखाभास का भी अनुभव नहीं करते क्योंकि उन्हें विदित है कि विषयों का उपभोग करने से उनके प्रति राग की वृद्धि होती है, राग से कामना बढ़ती है, और पुनः अप्राप्ति से दुःख होता है, भोग से तृप्ति हो जाती हो ऐसा तो होता है नहीं, अतः कर्माशय के फलस्वरूप प्राप्त भोग दुःख का ही कारण है, यही स्वीकार किया जाता है।[1] इसीलिए सूत्रकार पतञ्जलि ने समस्त दृष्ट और अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्माशय को क्लेशमूलक ही स्वीकार किया है। चाहे उसका विपाक (फल) जन्म हो चाहे आयु और चाहे भोग।[2]

कर्माशय के रूप में चित्त में अनादिकाल से असंख्यात कर्मसंस्कार चले आ रहे हैं। इनमें कुछ **प्रधान** और कुछ **उपसर्जन** कर्माशय कहे जा सकते हैं। जिन कर्मवासनाओं के संस्कार प्रबल रूप से उत्पन्न होते हैं उन्हें प्रधान कर्माशय कहते हैं, और जिनके संस्कार शिथिल रूप से पड़े रहते हैं, उन्हें उपसर्जन कर्माशय कहते हैं। मरणकाल में प्रधान कर्माशय पूरे वेग से जागृत हो जाते हैं, साथ ही पूर्व और वर्तमान जन्म के अनुकूल वासनाओं को उद्भूत करते हैं।[3]

---

१. (क) भोगाभ्यासमनु विवर्द्धन्ते रागाः, कौशलानि चेन्द्रियाणामिति तस्मादनुपायः सुखस्य भोगाभ्यासः।—योगभाष्य २.१५

(ख) विषयाणामुपभ्युज्यमानानां यथायथं गर्द्धाभिवृद्धेस्तदप्राप्तिकृतस्य दुःखस्यापरिहार्यतया दुखान्तरसाधनत्वाच्चास्त्येव दुःखरूपता।—भोजवृत्तिः २.१५

२. क्लेशमूलकर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः। सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥
परिणामतापसंस्कारदुःखै गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वविवेकिनः॥
—यो०सू० २.१२,१३,१५

३. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्। यो. सू. ४.८

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें भी जो संस्कार प्रधानतम होता है, अन्य संस्कार उसके सहायक बन जाते हैं और तब उनकी समष्टि की वासना के अनुसार जन्म आयु और भोग का निर्धारण होता है। ऐसे कर्माशय (कर्म समष्टि) को, जिसके जन्म, आयु और भोग निश्चित हो गये हैं, वे नियत-विपाक कर्माशय कहे जाते हैं। मुण्डक उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता में इस नियत भाव को प्राप्त हो रहे कर्माशय को ही भावों का स्मरण अथवा कामना नाम से अग्रिम जन्म का हेतु माना है।[1]

वे कर्म (उपर्जन कर्म) जिनका फलोपभोग करने के लिये जन्म, आयुष्य और भोग अभी नियत नहीं हुआ है, वे अनियत विपाक कर्माशय कहलाते हैं, ये कर्म अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्म भी कहलाते हैं, क्योंकि इनका फल वर्तमान जन्म में नहीं होना है। अनियत विपाक कर्माशय का विभाजन दो समूहों में किया जा सकता है (१) इनमें प्रथम वे हैं जिनका स्वयं का विपाक नहीं होता किन्तु नियत विपाक कर्म के प्रभाव में कुछ न्यूनता या अधिकता उत्पन्न करके नष्ट हो जाते हैं। अथवा उनमें संयुक्त होकर फल देते हैं। (२) दूसरे वे हैं जो चित्तभूमि में दबे हुए तब तक वैसे ही पड़े रहते हैं, जब तक कि उन्हें किसी अनुकूल जन्म और साधन को प्राप्त कर फल देने के लिए अवसर नहीं मिलता। जब कभी उनको जगानेवाले कर्माशय की प्रधानता होती है, तब वे उद्बुद्ध होकर फल देने की स्थिति में आते हैं (और उस स्थिति में उन्हें नियतविपाक की श्रेणी में रखा जा सकेगा) अन्यथा कितने जन्म और समय बीतने पर भी वे उसी भाँति सुरक्षित रहते हैं और उनका नाश नहीं होता। इससे भिन्न इनकी तीसरी स्थिति वह भी होती है जब योगसाधना आदि के द्वारा तत्त्वज्ञान का उदय होने पर वे भस्मसात् हो जाते हैं।[2]

पतञ्जलि के अनुसार आशिष् के रूप में ये कर्माशय अनादि काल से जीव के साथ विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि कर्माशय दृष्ट जन्मवेदनीय और अदृष्ट जन्मवेदनीय अथवा नियतविपाक और अनियतविपाक नाम से दो प्रकार का होता है। अदृष्ट जन्मवेदनीय कर्माशय के द्वारा ही अग्रिम जन्म के जन्म आयुष्य और भोग का निर्धारण होता है। इस निर्धारण में कर्मसमष्टि रूप कर्माशय कारण होता है, कर्मव्यष्टि नहीं।

—स्वामी केशवानन्द योग संस्थान
८/६ रूपनगर, दिल्ली-११०००७

---

१. (क) कामान्यः कामयते मन्यमानः सः कामभिर्जायते यत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृताव्यनस्तु इहैव सर्वे प्रविशन्ति कामाः॥—मुंड० २-२-२.
(ख) यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥—गीता० ८-६

२. (क) ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। —गीता ४.३७
(ख) ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुं पंडितं बुधाः। —गीता ४.१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org